भारतीय ज्ञान प्रणाली उद्गम और विकास

सम्पादक :
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

भारतीय ज्ञान प्रणाली
उद्गम और विकास

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001

प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
Books n Books
51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001
ई-मेल : bnbajmer@gmail.com
मो. 9660111549

संस्करण
प्रथम 2026

ISBN : 978-81-993854-1-2

मूल्य - 400/-

रचना - भारतीय ज्ञान प्रणाली-उद्गम और विकास

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

आवरण - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

मुद्रक
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

8

भारतीय ज्ञान परम्परा में अथर्ववेद में विवाह संस्कार

आराधना माहेश्वरी
सहायक आचार्य (समाज विज्ञान विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

संस्कार का अर्थ :

प्राचीन भारतीय धर्म–परम्परा में मानव जीवन को केवल जैविक घटना नहीं, अपितु एक सतत नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक यात्रा के रूप में देखा गया है। इसी दृष्टि से हमारे धर्मप्रणेताओं और महर्षियों ने यह व्यवस्था की कि मानव जीवन गर्भाधान से लेकर मृत्यु और उसके पश्चात् तक विभिन्न धार्मिक कृत्यों से संबद्ध रहे। ये धार्मिक कृत्य ही 'संस्कार' कहलाते हैं। संस्कारों का मूल उद्देश्य मानव जीवन को सुसंस्कृत बनाना है, अर्थात् उसे नियमित, पवित्र, गुणसम्पन्न और उन्नत स्वरूप प्रदान करना।

भारतीय विचारधारा के अनुसार मनुष्य जन्म से पूर्णतः असंस्कृत होता है। उसमें न तो नैतिक अनुशासन होता है और न ही सामाजिक उत्तरदायित्व का पूर्ण बोध। उसे विशिष्ट क्रियाओं, विधि–विधानों और अनुष्ठानों के माध्यम से परिष्कृत किया जाता है। यही प्रक्रिया संस्कार कहलाती है। संस्कारों द्वारा ही मनुष्य का जीवन शुद्ध, परिमार्जित और उन्नत बनता है। पं. रघुनन्दन शर्मा के अनुसार संस्कार वे धार्मिक अनुष्ठान और क्रियाएँ हैं जिनसे व्यक्ति का परिष्कार होता है, चाहे वह भौतिक स्तर पर हो, मानसिक स्तर पर हो या बौद्धिक स्तर पर। वस्तुतः संस्कार मनुष्य के भीतर निहित उसकी अव्यक्त प्रतिभा और सामर्थ्य को प्रकट करने का माध्यम बनते हैं तथा उसके विकास को उचित दिशा प्रदान करते हैं।

'संस्कार' शब्द की व्युत्पत्ति 'सम्' उपसर्ग के साथ 'कृञ्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय जोड़कर मानी गई है। इस व्युत्पत्ति से यह स्पष्ट होता है कि संस्कार का तात्पर्य है—पूर्ण करना, परिष्कृत करना और उन्नत बनाना। वामन शिवराम आप्टे ने इस शब्द के अनेक अर्थ बताए हैं, जैसे शुद्ध करना, शिक्षा देना, सज्जा करना, पवित्रीकरण,

मानसिक संस्कार, स्मरणशक्ति की शुद्धि, धार्मिक कृत्य और अनुष्ठान। प्रो. आर. सी. पाठक ने 'संस्कार' के लिए अंग्रेजी शब्द 'Sacrament' का उल्लेख किया है, जिसका आशय धार्मिक विधि-विधान, विलक्षण पवित्र कर्म तथा शपथ द्वारा व्यक्ति को नैतिक बन्धन में बाँधने से है।

मीमांसा परम्परा में भी संस्कार की गहन व्याख्या मिलती है। काणे के अनुसार जैमिनीय सूत्र की टीका में शबरस्वामी ने कहा है कि संस्कार वह है जिसके होने से कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी विशेष कार्य के लिए योग्य हो जाता है। तन्त्रवार्तिक में भी यही भाव व्यक्त किया गया है कि जो क्रियाएँ योग्यता उत्पन्न करती हैं, वही संस्कार कहलाती हैं। यह योग्यता दो प्रकार की मानी गई है—एक, पापों के क्षय से उत्पन्न योग्यता और दूसरी, नवीन उत्तम गुणों के आधान से उत्पन्न योग्यता। इस प्रकार संस्कार मनुष्य को पापमुक्त करके उसमें सद्‌गुणों का विकास करते हैं और उसे अपने स्वधर्म के पालन के योग्य बनाते हैं।

'वीरमित्रोदय' में संस्कार को ऐसी विलक्षण योग्यता कहा गया है जो शास्त्रविहित क्रियाओं के अनुष्ठान से उत्पन्न होती है। यह योग्यता कभी व्यक्ति को आगे के संस्कारों और कर्तव्यों के योग्य बनाती है और कभी जन्मगत अथवा शारीरिक दोषों का परिमार्जन करती है। चरक संहिता में संस्कार को गुणान्तर का आधान करने वाला कहा गया है, अर्थात् संस्कार व्यक्ति के भीतर नवीन और श्रेष्ठ गुणों का संचार करते हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार जिन क्रियाओं से शरीर, मन और आत्मा का उन्नयन होता है, वही संस्कार कहलाते हैं। उन्होंने गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक सोलह संस्कारों का उल्लेख किया है। डॉ. राजबली पाण्डेय के मत में संस्कार वे धार्मिक शुद्धि-क्रियाएँ और अनुष्ठान हैं जिनके द्वारा व्यक्ति का दैहिक, मानसिक और बौद्धिक परिष्कार होता है तथा वह समाज का पूर्ण विकसित और उत्तरदायी सदस्य बनता है। 'मुहूर्त चिन्तामणि' में भी कहा गया है कि श्रुति और स्मृति में वर्णित जिन कर्मों द्वारा मनुष्य को संस्कृत किया जाता है, वही संस्कार हैं।

संस्कारों की इस अवधारणा को यदि एक उपमा द्वारा समझें तो यह स्पष्ट हो जाती है। जैसे सुवर्ण, रजत आदि धातुएँ विभिन्न वैज्ञानिक संस्कारों के पश्चात् ही स्वच्छ, सुन्दर और उपयोगी बनती हैं तथा आभूषणों के रूप में लोक-व्यवहार में प्रतिष्ठा प्राप्त करती हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी अनेक शुभ संस्कारों से गुजरकर ही सुसंस्कृत और 'श्रेष्ठ मानव' बनता है।

संस्कारों की परम्परा व प्राचीनता :

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि संस्कार मानव के शरीर और मन को

स्वस्थ, शुद्ध तथा परिष्कृत बनाकर उसमें सद्‌गुणों का विकास करते हैं और उसके जीवन को योग्य, व्यवस्थित तथा उन्नत स्वरूप प्रदान करते हैं। यही कारण है कि संस्कारों की परम्परा भारतीय सभ्यता में अत्यन्त प्राचीन है और इसका प्रवाह वैदिक काल से निरन्तर चला आ रहा है। संस्कारों के प्रमाण हमें वेदों से लेकर सूत्र साहित्य, ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों, गृह्यसूत्रों, धर्मसूत्रों और स्मृतियों तक विस्तृत रूप में प्राप्त होते हैं।

ऋग्वेद में संस्कारों के बीज रूप संकेत मिलते हैं। इसके कुछ मंत्र गर्भाधान संस्कार की ओर संकेत करते हैं, जिससे यह ज्ञात होता है कि सन्तानोत्पत्ति को केवल जैविक प्रक्रिया न मानकर उसे धार्मिक और नैतिक अनुशासन से जोड़ा गया था। विवाह सूक्त के माध्यम से विवाह संस्कार का भी स्पष्ट संकेत मिलता है, जिसमें दाम्पत्य जीवन को धर्म, अर्थ और समाज के व्यापक उद्देश्यों से जोड़ा गया है। इसी प्रकार अन्त्येष्टि संस्कार से सम्बन्धित कुछ स्थलों में मृतक के प्रति कर्तव्यों और परलोक की कामना का भाव व्यक्त हुआ है। उत्तरवर्ती युग में विकसित विधि-विधान वस्तुतः इन्हीं वैदिक संकेतों के क्रमिक और सुस्पष्ट रूप हैं।

यजुर्वेद में मुख्यतः श्रौत यज्ञों के सन्दर्भ में संस्कारों की झलक मिलती है। इसमें यज्ञ से पूर्व किये जाने वाले मुण्डन का उल्लेख है, जिसे मुण्डन या चूड़ाकर्म संस्कार का आद्य रूप माना जा सकता है। छुरे की स्तुति तथा नाई को निर्देश देने सम्बन्धी मंत्र इस बात के प्रमाण हैं कि शारीरिक शुद्धि और बाह्य परिष्कार को भी धार्मिक महत्व दिया गया था।

अथर्ववेद को लौकिक धर्म और धार्मिक विधि-विधानों का सर्वाधिक समृद्ध प्रतिनिधि माना जाता है। इसमें मानव जीवन के प्रायः सभी पक्षों से सम्बद्ध मंत्र उपलब्ध हैं। गर्भाधान, विवाह और अन्त्येष्टि से सम्बन्धित सूक्त यहाँ ऋग्वेद की अपेक्षा अधिक विस्तार और स्पष्टता के साथ मिलते हैं। अथर्ववेद के अठारहवें काण्ड में दीर्घायु, स्वास्थ्य और कल्याण की प्रार्थनाएँ की गई हैं, जिनका प्रयोग मुण्डन, गोदान, उपनयन आदि संस्कारों के अवसर पर किया जाता था। इससे यह सिद्ध होता है कि संस्कारों का विकसित और व्यापक स्वरूप अथर्ववेद में विशेष रूप से देखने को मिलता है।

वेदों के पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थों में संस्कारों का और अधिक व्यवस्थित वर्णन प्राप्त होता है। गोपथ ब्राह्मण में उपनयन संस्कार का उल्लेख मिलता है, जबकि शतपथ ब्राह्मण में गोदान संस्कार का विस्तृत निरूपण है। यहीं विद्यार्थी जीवन के लिए 'ब्रह्मचर्य' शब्द का प्रयोग मिलता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा को एक पवित्र और अनुशासित आश्रम के रूप में स्वीकार किया गया था। शतपथ ब्राह्मण में उपनयन,

वेदों के दैनिक स्वाध्याय तथा अन्त्येष्टि संस्कार से सम्बन्धित विवरण भी प्राप्त होते हैं, जो अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राय: उपलब्ध नहीं हैं।

आरण्यक और उपनिषद् मुख्यत: दार्शनिक विषयों से सम्बद्ध होने के कारण लौकिक संस्कारों का विस्तृत वर्णन नहीं करते, फिर भी संस्कार-परम्परा की कुछ महत्वपूर्ण सूचनाएँ इनमें भी मिलती हैं। तैत्तिरीय आरण्यक से ज्ञात होता है कि विवाह सामान्यत: परिपक्व आयु में सम्पन्न होते थे और अविवाहित कन्या का गर्भवती होना पाप माना जाता था। छान्दोग्य उपनिषद् में उपनयन संस्कार का उल्लेख करते हुए गुरु की महत्ता प्रतिपादित की गई है और कहा गया है कि गुरु ही ब्रह्मचारी का एकमात्र आश्रय और विद्या प्राप्ति का साधन है। वहीं गुरु के आश्रम में विद्यार्थी के प्रवेश का भी उल्लेख मिलता है। तैत्तिरीय उपनिषद् में नामकरण की पद्धति तथा गुरुकुल से विदा लेते समय विद्यार्थी के लिए दिये जाने वाले नैतिक और सामाजिक उपदेशों का वर्णन प्राप्त होता है।

शास्त्रीय दृष्टि से संस्कारों का सर्वाधिक व्यवस्थित विवेचन गृह्यसूत्रों में मिलता है। गृह्यसूत्रों का मुख्य विषय ही संस्कार, कर्मकाण्ड, प्रथाएँ और यज्ञ हैं, जिनका पालन प्रत्येक गृहस्थ के लिए अनिवार्य माना गया है। इनमें विभिन्न संस्कारों के अवसर पर उच्चारित होने वाले मंत्रों, विधियों और आचार-विधानों का विस्तृत विवरण दिया गया है। धर्मसूत्रों में भी 'संस्कार' शब्द का प्रयोग सामान्यत: धार्मिक कृत्यों के अर्थ में हुआ है और इनमें संस्कारों का सविस्तार निरूपण मिलता है। स्मृतियों में भी संस्कारों और उनकी विधियों का उल्लेख है, यद्यपि सभी स्मृतियों में सभी संस्कारों का वर्णन नहीं मिलता।

संस्कारों की संख्या के विषय में शास्त्रकारों में मतभेद पाया जाता है। आश्वलायन गृह्यसूत्र में संस्कारों की संख्या ग्यारह मानी गई है, जिनमें गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक के प्रमुख संस्कार सम्मिलित हैं। पारस्कर और बोधायन गृह्यसूत्रों में इनकी संख्या तेरह बताई गई है, केवल नामों और वर्गीकरण में कुछ भेद है। वराह गृह्यसूत्र तेरह तथा वैखानस गृह्यसूत्र अठारह संस्कारों का उल्लेख करता है।

गौतम धर्मसूत्र में संस्कारों की अवधारणा और अधिक विस्तृत रूप में मिलती है। इसमें आठ आत्मगुणों के साथ चालीस संस्कारों का उल्लेख है, जिनमें गृहस्थ जीवन के संस्कारों के साथ-साथ पंचमहायज्ञ, विविध हविर्यज्ञ और सोमयज्ञ भी सम्मिलित हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि संस्कार केवल जीवन के आरम्भिक या पारिवारिक कर्म नहीं थे, बल्कि सम्पूर्ण धार्मिक, सामाजिक और यज्ञीय जीवन को समेटने वाली व्यापक व्यवस्था थे।

संस्कारों की परम्परा, संख्या और अथर्ववैदिक आधार :

भिन्न-भिन्न स्मृतिकारों ने संस्कारों की संख्या को लेकर विविध मत प्रस्तुत किए हैं। मनुस्मृति के अनुसार गर्भाधान से लेकर तेरह स्मार्त संस्कार माने गए हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति में केशान्त को छोड़कर मृत्यु तक के संस्कारों का वर्णन प्राप्त होता है। अंगिरा स्मृति में पच्चीस संस्कारों का उल्लेख है, जबकि व्यास स्मृति सोलह संस्कारों का निरूपण करती है। यद्यपि संख्या में यह विविधता दिखाई देती है, तथापि संस्कारों के महत्त्व, व्यापकता और जीवनोपयोगिता को ध्यान में रखते हुए धर्मशास्त्रकारों ने सामान्यत: जिन सोलह संस्कारों को मान्यता दी, वही सर्वमान्य और अधिक प्रचलित हुए। ये संस्कार मानव जीवन की सम्पूर्ण यात्रा को गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक धार्मिक, नैतिक और सामाजिक अनुशासन में बाँधते हैं।

गर्भाधान संस्कार :- गर्भाधान संस्कार जन्मपूर्व संस्कारों में प्रथम है। इसका उद्देश्य पत्नी द्वारा गर्भधारण के क्षण को धार्मिक और पवित्र बनाना है। वैदिक काल से ही यह संस्कार प्रचलित रहा है। अथर्ववेद के विवाह काण्ड में इससे सम्बन्धित मंत्र मिलते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि यह क्रिया केवल शारीरिक नहीं, बल्कि देवताओं के आह्वान और आशीर्वाद से सम्पन्न होने वाला पवित्र कर्म मानी जाती थी। पति-पत्नी के संयोग को सृष्टि-क्रम से जोड़ा गया और विष्णु, त्वष्टा, प्रजापति तथा अश्विनीकुमारों से गर्भ-स्थापन की प्रार्थना की जाती थी। इससे स्पष्ट है कि सन्तानोत्पत्ति को दैवी विधान और सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में देखा जाता था।

पुंसवन संस्कार :- गर्भाधान के तीसरे मास में सम्पन्न होने वाला पुंसवन संस्कार पुत्र-सन्तान की कामना से किया जाता था। इसे प्राजापत्य संस्कार भी कहा गया है। अथर्ववैदिक मंत्रों से ज्ञात होता है कि इस अवसर पर स्त्री की कलाई में रक्षासूत्र बाँधा जाता था और प्रजापति, त्वष्टा तथा अन्य देवताओं से प्रार्थना की जाती थी कि गर्भस्थ शिशु पुरुष सन्तान के रूप में जन्म ले। औषधियों और वनस्पतियों का प्रयोग भी इस संस्कार का अंग था। तत्कालीन समाज में पुत्रवती होना श्रेयस्कर माना जाता था, अत: यह संस्कार सामाजिक मनोवृत्ति का भी द्योतक है।

सीमन्तोन्नयन संस्कार :- पुंसवन के पश्चात् गर्भ के चौथे मास में सीमन्तोन्नयन संस्कार किया जाता था। इसमें गर्भिणी स्त्री के केशों को सँवारा जाता था और गर्भ की रक्षा के लिए मंत्रोच्चार तथा औषधियों का प्रयोग होता था। अथर्ववेद में ऐसे अनेक मंत्र मिलते हैं जिनमें गर्भ को असुरों, रोगों और दुष्ट शक्तियों से सुरक्षित रखने की कामना व्यक्त की गई है। पीली सरसों जैसी औषधियों को मंत्रसिद्ध मानकर प्रयोग में लाया जाता था। यह संस्कार गर्भ-संरक्षण की धार्मिक और चिकित्सकीय

चेतना को प्रकट करता है।

जातकर्म संस्कार :- जातकर्म संस्कार शिशु के जन्म के पश्चात् पिता द्वारा सम्पन्न किया जाता था। यद्यपि अथर्ववेद में इसका प्रत्यक्ष नाम से उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु सुरक्षित और सुगम प्रसव के लिए अनेक सूक्त उपलब्ध हैं। इनमें देवताओं से प्रार्थना की गई है कि प्रसव निर्विघ्न हो और माता तथा शिशु दोनों सुरक्षित रहें। अशुभ नक्षत्रों में उत्पन्न बालकों के दोष-निवारण के लिए भी विशेष कृत्य किए जाते थे, जिससे वह दीर्घायु और मंगलकारी बने।

नामकरण संस्कार :- नामकरण संस्कार का उद्देश्य बालक को समाज में एक विशिष्ट पहचान प्रदान करना था। अथर्ववेद के कुछ मंत्रों का प्रयोग नामकरण के अवसर पर किया जाता था, यद्यपि इससे यह पूर्णतः सिद्ध नहीं होता कि नामकरण का स्वतंत्र और विकसित संस्कार उसी काल में विद्यमान था। फिर भी यह स्पष्ट है कि नाम, शान्ति और संरक्षण की भावना से जुड़ा हुआ था।

निष्क्रमण संस्कार :- निष्क्रमण संस्कार में शिशु को पहली बार गृह से बाहर, सूर्य और बाह्य वातावरण के दर्शन के लिए लाया जाता था। इसे शुभ मुहूर्त और नक्षत्र में सम्पन्न किया जाता था। अथर्ववेद में सूर्य, चन्द्र और वायु के प्रतीकात्मक उल्लेख द्वारा इस संस्कार की भावना व्यक्त हुई है। स्मृतियों के अनुसार यह संस्कार जन्म के चौथे मास में किया जाता था।

अन्नप्राशन संस्कार :- अन्नप्राशन संस्कार में शिशु को पहली बार अन्न ग्रहण कराया जाता था। अथर्ववेद के मंत्रों से संकेत मिलता है कि यह संस्कार दन्तोद्गम के समय, अर्थात् लगभग छठे मास में सम्पन्न होता था। इसमें अन्न को स्वास्थ्य, बल और मंगल से जोड़ा गया है।

चूड़ाकरण या मुण्डन संस्कार :- चूड़ाकरण या मुण्डन संस्कार में शिशु के बाल काटकर शिखा रखी जाती थी। इसे शारीरिक शुद्धि, दीर्घायु और सौंदर्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना गया। अथर्ववेद में छुरा, जल और देवताओं के आह्वान से सम्बन्धित मंत्र इस संस्कार की प्राचीनता को सिद्ध करते हैं।

कर्णबेध संस्कार :- कर्णबेध संस्कार भी वैदिक समाज में प्रचलित था। अथर्ववेद में अप्रत्यक्ष संकेत मिलते हैं और आयुर्वेदाचार्यों ने इसे स्वास्थ्य और सौंदर्य से जोड़ा है। यद्यपि आज यह संस्कार दुर्लभ हो गया है, फिर भी प्राचीन काल में इसका विशेष स्थान था।

विद्यारम्भ संस्कार :- विद्यारम्भ संस्कार के साथ बालक की औपचारिक शिक्षा का प्रारम्भ होता था। इसे अक्षरारम्भ या अक्षरलेखन भी कहा गया। यह उपनयन

से पूर्व किया जाता था, जिससे बालक प्राथमिक शिक्षा के लिए तैयार हो सके।

उपनयन संस्कार :- उपनयन संस्कार हिन्दू संस्कृति का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संस्कार है। इसका उद्देश्य बालक को आचार्य के समीप ले जाकर ब्रह्मविद्या और वेदाध्ययन के योग्य बनाना था। अथर्ववेद में उपनयन से सम्बन्धित अनेक विधियों का वर्णन मिलता है, जैसे मेखला बन्धन, दीक्षा, व्रत और ब्रह्मचर्य का पालन। इस संस्कार के बिना व्यक्ति को द्विज नहीं माना जाता था।

वेदारम्भ संस्कार :- वेदारम्भ संस्कार में गुरु के संरक्षण में वेदाध्ययन का विधिवत् प्रारम्भ होता था। इसे बौद्धिक और आध्यात्मिक उन्नति का आधार माना गया। उपनयन के पश्चात् बालक गुरुकुल में रहकर शास्त्रों का अध्ययन करता था।

केशान्त संस्कार :- केशान्त या गोदान संस्कार में ब्रह्मचारी के श्मश्रुओं का प्रथम क्षौर किया जाता था और आचार्य को गौ का दान दिया जाता था। इसके साथ कठोर अनुशासन और मौनव्रत का पालन भी किया जाता था।

समावर्तन संस्कार :- समावर्तन संस्कार वेदाध्ययन की समाप्ति पर सम्पन्न होता था। इसे स्नान संस्कार भी कहा जाता था। इसके द्वारा ब्रह्मचर्य आश्रम की पूर्णता और गृहस्थाश्रम में प्रवेश की अनुमति दी जाती थी।

विवाह संस्कार :- विवाह संस्कार सोलह संस्कारों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में इसकी अत्यन्त भावपूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है। विवाह को त्रिवर्ग सिद्धि और वर्णाश्रम धर्म के पालन का साधन माना गया। गृहस्थाश्रम की स्थापना विवाह द्वारा ही होती थी और इसे यज्ञीय तथा सामाजिक कर्तव्यों का आधार माना गया।

अन्त्येष्टि संस्कार :- अन्त्येष्टि संस्कार मानव जीवन का अंतिम संस्कार है। वेदों में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। अथर्ववेद में विशेष रूप से शव-संस्कार की प्रक्रियाओं और परलोक-शान्ति की कामनाओं का उल्लेख है। यह संस्कार पंचतत्त्वों में शरीर के विसर्जन और आत्मा की शान्ति का प्रतीक है।

इस प्रकार गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक के संस्कार मानव जीवन के प्रत्येक चरण को परिष्कृत और अनुशासित करते हैं। यद्यपि आधुनिक युग में अनेक संस्कार लुप्तप्राय हो गए हैं और कुछ ने चिकित्सकीय या औपचारिक रूप धारण कर लिया है, फिर भी भारतीय संस्कृति में संस्कारों का महत्त्व आज भी मानव-कल्याण और व्यक्तित्व-निर्माण की महान परम्परा के रूप में स्थापित है।

सारतः कहा जा सकता है कि संस्कार भारतीय संस्कृति की प्राचीन और आधारभूत परम्परा हैं, जिनका उद्देश्य मानव जीवन को गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि

तक शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक रूप से परिष्कृत करना है। वेदों, विशेषतः अथर्ववेद में, इन संस्कारों का विस्तृत और सुव्यवस्थित रूप मिलता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि जीवन के प्रत्येक चरण को धार्मिक अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ा गया। यद्यपि संस्कारों की संख्या को लेकर मतभेद रहे, फिर भी सोलह संस्कार सर्वमान्य हुए, क्योंकि वे मानव जीवन की सभी अवस्थाओं को समेटते हैं। इस प्रकार संस्कार केवल कर्मकाण्ड नहीं, बल्कि व्यक्तित्व-निर्माण और समाज-कल्याण की एक समग्र व्यवस्था हैं, जिनका मूल उद्देश्य आज भी प्रासंगिक है।

☆☆☆